

भूमिका

भगवद्गीता क्यों पढ़ें?

मानव समाज में ज्ञान की बहुत आवश्यकता है, इसलिये पूरे विश्व में असंख्य स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय तथा शोध-केन्द्र हैं। इनका उद्देश्य समाज को उन्नत करना है तथा इनके माध्यम से ज्ञान-विज्ञान बहुत उन्नत भी हो चुका है। परन्तु इतने उन्नति और प्रगति के बावजूद भी मानव-समाज क्यों आज इतना अव्यवस्थित, अस्थिर और अशांत है? मनुष्य सुखी क्यों नहीं है और समाज शांतिपूर्ण क्यों नहीं है?

स्वस्थ जीवन एवं सुन्दर सभ्यता के लिए वास्तविक ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान मनुष्यों के लिए है, पशुओं के लिये नहीं! मानव-जीवन का एक विशेष उद्देश्य है जो पशुओं का नहीं है। पशु केवल आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन के माध्यम से सुख ढूँढते हैं। परन्तु कोई भी मनुष्य इन नीच पाशविक प्रवृत्तियों के माध्यम से इन्द्रिय-सुख प्राप्त करके तृप्त नहीं हो सकता क्योंकि मानव-जीवन का एक उच्चतर लक्ष्य है ईश्वरोपलब्धि। मानव-जीवन का यह महान उद्देश्य ही मनुष्य को पशु से पृथक करता है।

हम सभी को जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि इन चारों दुःखों का शिकार होना पड़ता है। वैज्ञानिक, दार्शनिक, नेता कोई भी इन दुःखों से बच नहीं सकता। स्कूल, कॉलेज एवं शोध-केन्द्रों से प्राप्त भौतिक ज्ञान की मदद से जीवन की इन भौतिक समस्याओं से मुक्त होना क्या संभव है? भौतिक ज्ञान हमें उन्नत ढंग से इन्द्रिय-भोग करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सिखाता। हम इस ज्ञान के द्वारा प्रकृति का शोषण करके प्राकृतिक सम्पदाओं का केवल भोग करना सीखते हैं। परन्तु इसका परिणाम यह होता है कि मानव-समाज पर भोगवाद का प्रकोप बढ़ता रहता है, जिससे चारों तरफ अनैतिक स्पर्धा, लोभ, असंतोष और युद्ध की दावाग्नि भड़क उठती है तथा मनुष्य का जीवन दुःख, हताशा और असंतोष से भर उठता है।

आज हम देख रहे हैं कि प्रत्येक देश किसी अन्य देश को नष्ट करने के लिए प्रचुर मात्रा में धनराशि जमा करके महाविनाशक अस्त्र-शस्त्र तैयार कर रहा है, जिसके पीछे आधुनिक समाज के सभ्य मनुष्यों का हाथ है। परन्तु क्या इस प्रकार कुत्ते-बिल्लियों के समान आपस में लड़ाई-झगड़ा करना ही इस अमूल्य मानव-जीवन

और सभ्यता का उद्देश्य है? इसलिए केवल स्कूल-कॉलेजों द्वारा प्रदत्त भौतिक भोगतृप्तिमूलक तथाकथित ज्ञान कभी मानव सभ्यता को यथार्थ रूप से उन्नत नहीं कर सकता, अस्वस्थ भोगवाद एवं नैतिक पतन को रोक नहीं सकता। यह मानव जीवन में वास्तविक शांति और आनन्द नहीं दे सकता।

यद्यपि विश्व के तथाकथित उन्नत देश भौतिक विद्या में अत्यंत उन्नत हैं, तथापि उनका समाज विनाश की ओर अग्रसर है। निरंतर बढ़ता अपराध, विवाह-विच्छेद (तलाक), मानसिक असंतुलन, माता-पिता के प्रति हिंसापूर्ण व्यवहार, नशा, आत्महत्या आदि समाज को पतन की ओर धकेल रहे हैं। दुनियाँ के दूसरे अवनत देश इन उन्नत देशों का अनुकरण कर रहे हैं। इस प्रकार पूरे विश्व में एक आसुरिक सभ्यता का विकास हो रहा है, जो मनुष्य को पारमार्थिक सम्पदा से विहीन पशु के रूप में परिणत कर रही है।

मानव-सभ्यता की यथार्थ उन्नति के लिए भौतिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है। केवल वैदिक-शास्त्र द्वारा प्रदत्त पारमार्थिक ज्ञान ही इस जड़ ज्ञान के अभाव को पूरा कर सकता है। यही पारमार्थिक ज्ञान परम सत्य, नित्य, शाश्वत और सनातन है। यह पूर्ण और स्पष्ट है। भगवद्गीता समस्त वैदिक शास्त्रों का सारांश है।

भगवद्गीता किसी निर्दिष्ट वर्ग, समुदाय अथवा सम्प्रदाय के लिए नहीं है। यह संसार के प्रत्येक मनुष्य, यहाँ तक कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड के हर एक जीव के लिये है। इस पृथ्वी का प्रत्येक व्यक्ति भगवद्गीता का अध्ययन करके जीवन का वास्तविक अर्थ एवं उद्देश्य प्राप्त कर सकता है तथा इस भौतिक जगत की भयंकर अस्थिरता, उत्कंठा, बेचैनी से सदा के लिए मुक्त होकर एक अपूर्व आनन्दमय सुखी जीवन प्राप्त कर सकता है। इस ज्ञान का यदि हम समाज में प्रयोग करें तो मानव-समाज एवं विश्व-सभ्यता चरम भोगवाद से मुक्त होगी और विश्व-सभ्यता सही अर्थ में उन्नत होकर शांति और समृद्धि से उज्ज्वल हो उठेगी।

भगवद्गीता की उपलब्धि किस प्रकार सम्भव है?

भगवद्गीता को यदि हम यथार्थ रूप से समझना चाहें तो भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में जो कुछ भी कहा है उनकी इस वाणी को बिना किसी परिवर्तन के बिल्कुल उसी रूप में ग्रहण करना होगा। अपनी इच्छानुसार कोई काल्पनिक व्याख्या प्रस्तुत करके भगवद्गीता को विकृत करना ठीक नहीं होगा। बहुत सारे पंडितों ने अज्ञानी लोगों के

समक्ष अपनी विद्या-बुद्धि का प्रदर्शन करने के लिए गीता की टीकाएँ रची है परंतु उन्हें पढ़कर आज तक कोई भी कृष्ण भक्त नहीं बन पाया। ऐसी भ्रांत व्याख्याओं का अध्ययन करना केवल निष्फल ही नहीं अपितु उससे पारमार्थिक जीवन का नाश हो जाता है।

कोई स्वयं कल्पना करके वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। भगवद्गीता का ज्ञान भगवान श्रीकृष्ण से परम्परा-क्रम में प्रवाहित होता है। श्रीकृष्ण स्वयं इस दिव्यज्ञान का दान किसी एक व्यक्ति को करते हैं, फिर वह किसी दूसरे व्यक्ति को दान करता है और फिर वह भी किसी और को दान करता है। इसे परम्परा कहते हैं। शुद्ध भगवत-तत्त्वज्ञान इस प्रकार परम्परागत रूप से क्रमशः प्रवाहित होता रहता है। गीता के चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण ने इसकी व्याख्या की है।

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ने कहा है कि केवल उनके शरणागत भक्त ही उन्हें जान सकते हैं, 'भक्त्यामामभिजानाति' अन्य कोई नहीं। इसलिए गीता का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्ही से सुनना होगा, जो शुद्ध अनन्यचित्त कृष्ण-भक्त हैं, जो कृष्ण के निर्देशानुसार जीवन-यापन कर रहे हैं तथा जिन्होंने परम्परा-क्रम में इस दिव्य ज्ञान को प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त दृढ़ श्रद्धावान् होने की जरूरत है, अहंकार के मोह में पड़कर संशयग्रस्त होने की नहीं। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने वीर अर्जुन से कहा है, 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्, संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् श्रद्धावान् व्यक्ति ज्ञान लाभ कर सकता है और संशयग्रस्त व्यक्ति का अध्यात्म-जीवन नष्ट हो जाता है। अतः व्यक्तिगत दृष्टिकोण से नहीं अपितु अर्जुन के समान श्रद्धा एवं विनम्रता युक्त हृदय से गीता को समझना होगा।

भगवद्गीता का ज्ञान नित्य, पूर्ण एवं स्पष्ट है, क्योंकि यह पूर्ण ज्ञानमय है और स्वयं परमेश्वर द्वारा प्रदत्त है। बद्ध जीव की इंद्रियाँ सब समय मोहग्रस्त, त्रुटिपूर्ण एवं अपूर्ण होती हैं। हर बद्ध जीव में चार दोष होते हैं:-

- (१) भ्रम—किसी एक वस्तु को कुछ अन्य समझ लेना।
- (२) प्रमाद— त्रुटि करने की प्रवृत्ति।
- (३) विप्रलिप्सा—धोखा खाने या धोखा देने की प्रवृत्ति।
- (४) करणापटव— अपूर्ण इंद्रियाँ।

इसलिए बद्ध-जीव का मनोकल्पित तत्त्व कितना ही आकर्षणीय क्यों न हो, वह

वास्तव में पूर्ण ज्ञान नहीं होता। परन्तु भगवान स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं। वे समस्त मायामोह एवं त्रुटि तथा अपूर्णताओं से परे हैं। इसलिए वे हमें जो ज्ञान प्रदान करते हैं, वह सब समय, सब स्थानों में नित्य है एवं परम पूर्ण है। भगवद्गीता में वही ज्ञान उल्लिखित है; भगवद्गीता समस्त वेद एवं उपनिषदों का निचोड़ा हुआ अमृत रस है।

भगवद्गीता के पाँच मूल विषय

भगवद्गीता में पाँच प्रधान मौलिक तत्वों का विश्लेषण है—

(१) परमेश्वर भगवान् (२) जीव (३) प्रकृति (४) काल एवं (५) कर्म।

संक्षेप में निम्नलिखित विश्लेषण प्रस्तुत है :-

(१) परमेश्वर भगवान् :-

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।

“मैं समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत्‌ों का कारण हूँ। प्रत्येक वस्तु मुझ ही से उद्भूत है।” —(भगवान् श्रीकृष्ण, गीता १०.८)

भगवान्, परब्रह्म, परमात्मा या श्रीकृष्ण किसी भी नाम से सम्बोधन क्यों न किया जाए वे ही समस्त वस्तुओं के स्रोत हैं, सब कारणों के कारण एवं सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। वे असमोर्ध्व हैं, अर्थात् न तो कोई उनके समान है और न ही उनसे बढ़कर। वे सभी के परम हितैषी, प्रभु एवं नियन्ता हैं। वे समस्त जड़ एवं चिन्मय जगत्‌ों के प्रभु एवं भोक्ता हैं। वे नित्य सनातन पुराण पुरुष हैं। वे पूर्ण तथा स्वराट् हैं। समस्त देवी-देवता उनके आज्ञावाहक हैं। वे सब अवतारों के भी उद्गम हैं। भगवान् श्रीकृष्ण चिन्मय, परम चेतन हैं वे विश्वब्रह्माण्ड के प्रत्येक जीव, प्रत्येक वस्तु, यहाँ तक कि प्रत्येक परमाणु के बारे में पूर्ण सचेतन हैं। जब वे किसी विशेष उद्देश्य से इस जड़-सृष्टि में अवतीर्ण होते हैं, तब भी उनकी चेतना कभी भी जड़ भाव द्वारा प्रभावित नहीं होती। भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत् में विद्यमान सभी का भगवान् कृष्ण से संपर्क है। योगीगण उन्हें सब प्राणियों में विराजमान परमात्मा के रूप में जानते हैं, ज्ञानीगण ब्रह्मरूप में उनको पहचानते हैं। किन्तु उनके शुद्ध भक्त उनके पूर्ण स्वरूप, सच्चिदानन्दमय भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में उनको स्वीकार करते हैं।

(२) जीव :-

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

“इस भौतिक जगत में समस्त बद्धजीव मेरे ही सनातन अंश हैं।”—(भगवान श्रीकृष्ण, गीता १५.७)

प्रत्येक मनुष्य, पशु या वनस्पति-वर्ग जिसमें भी जीवन या आत्मा हो उसे जीव कहा जाता है। जीवात्मा भगवान श्रीकृष्ण का नित्य, अविच्छेद विभिन्नांश है। इसलिए गुण की दृष्टि से जीव भगवान के समान है। जीवात्मा भगवान के समान ही नित्य, ज्ञानमय तथा आनंदमय है। जैसे किसी अग्निकुंड का एक छोटा सा स्फुलिंग (अंगारा) भी आग ही है। किन्तु परिमाण या मात्रा की दृष्टि से जीव भगवान से भिन्न है, भगवान पूर्ण एवं स्वराट हैं, जबकि जीव क्षुद्र एवं पराधीन है।

जीव एवं भगवान के बीच अविच्छेद सम्बन्ध है। अंश होने के नाते प्रत्येक जीव स्वरूप से ही भगवान का नित्य दास है। कृष्णसेवा को भूलकर जीव जब स्वयं स्वामी बनकर भोग की इच्छा करता है, तो उसे इस मायामय संसार में अधःपतित होना पड़ता है। यहाँ वह अपने कर्म एवं कामना के अनुसार एक के बाद एक भौतिक शरीर प्राप्त करता है एवं जन्म-मृत्यु के अंतहीन चक्र में फँस जाता है। किन्तु जब वह भगवान कृष्ण के प्रति पुनः शरणागत होता है और भगवान के नाम के जप से प्रारंभ होने वाली शुद्ध भक्ति का अनुशीलन करता है, तो उसकी चेतना भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाती है। अन्य अभिलाषाओं से शुन्य होकर भक्तिमय सेवा के परिणामस्वरूप, वह अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है, अपने चिन्मय स्वरूप में अधिष्ठित होता है एवं देहान्त के बाद भगवद्दाम वापस लौट जाता है।

(३) प्रकृति :-

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

“यह भौतिक प्रकृति मेरी शक्तियों में से एक है और मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है, जिससे सारे चर तथा अचर प्राणी उत्पन्न होते हैं।”

— (भगवान श्रीकृष्ण, गीता ९.१०)

प्रकृति दो प्रकार की है परा या श्रेष्ठ, चिन्मय प्रकृति एवं अपरा या निकृष्ट, जड़ प्रकृति। परा या अपरा दोनों ही प्रकृतियाँ भगवान श्रीकृष्ण की शक्ति हैं। जड़ प्रकृति कृष्ण की बहिरंगा मायाशक्ति है। जड़ प्रकृति सत्व, रज एवं तम इन तीन गुणों से

निर्मित है एवं इसमें आठ तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं मन, बुद्धि और अहंकार। जड़ प्रकृति के माध्यम से जीव के लिए जड़-देहादि युक्त वैचित्र्यमय जड़ जगत का निर्माण होता है। जड़ जगत अनित्य और विनाशशील है। जड़ जगत की सृष्टि होती है एवं उसके बाद काल के प्रभाव से एक दिन वह महाप्रलय के माध्यम से विनष्ट हो जाता है। तब फिर से सृष्टि होती है। अतः जड़ जगत असत्य या मिथ्या नहीं है, वास्तव में उसका अस्तित्व है, किन्तु अनित्य है।

श्रीकृष्ण को भूल जाने के फलस्वरूप जीव जड़ प्रकृति के बंधन में फँस जाता है। बद्ध जीव फिर जड़ प्रकृति के तीन गुणों (सत्व, रज, तम) द्वारा संचालित होता है। इस प्रकार वह प्रगाढ़ माया या अज्ञान से ढक जाता है। किन्तु जब कोई जीव श्रीकृष्ण के प्रति शरणागत होकर भक्तियोग का अनुशीलन करता है, तो उसमें दिव्यज्ञान प्रकाशित होता है। यही दिव्यज्ञान रूपी अग्नि त्रिगुणों से उत्पन्न समस्त कल्मषों को भस्म कर देती है। तब वह अपनी विशुद्ध निर्गुण अवस्था को प्राप्त करके पुनः चिन्मय प्रकृति में आ जाता है।

(४) कर्म :-

यज्ञार्थात् कर्मणो अन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

“श्रीकृष्ण के लिए यज्ञ रूप में कर्म करना चाहिए, अन्यथा कर्म के द्वारा इस भौतिक जगत में बंधन उत्पन्न होता है।”

—(भगवान श्रीकृष्ण, गीता ३.९)

अपने स्वरूप से ही जीव चिन्मय आत्मा है एवं भगवान श्रीकृष्ण का नित्यदास है। परम-स्वाधीन भगवान का अंश होने के नाते प्रत्येक जीव में आंशिक स्वतंत्रता रहती है। जब वह इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है तो वह भगवान श्रीकृष्ण के ही समान प्रभु एवं भोक्ता होने की कामना करता है। उसके फलस्वरूप वह भौतिक संसार रूपी कारागार अथवा प्रशिक्षण-केंद्र में आने को बाध्य हो जाता है। यहाँ वह प्रकृति की संपदाओं का स्वामी बनने का प्रयास करता है एवं जड़-देह द्वारा भोग करने में रुचि लेता है। इसीलिए वह कर्म करता है। अपनी भौतिक कामनाओं की पूर्ति हेतु किए जाने वाले ऐसे कर्मों को ‘सकाम कर्म’ कहते हैं। प्रत्येक कर्म का कोई न कोई फल होता है, जिसे जीव को अवश्य ही भोगना पड़ता है। इसे ही कर्मबन्धन कहते हैं। शुभ कर्मों से स्वर्गादि सुख मिलते हैं, और अशुभ पापकर्मों से नरकादि दुःख भोगने पड़ते हैं। इन सब कर्मफलों को भोगने हेतु जीव को मृत्यु के

बाद फिर एक नए जड़-शरीर में प्रवेश करना पड़ता है। पूर्व कर्मों के अनुसार कोई विशेष प्रकार का शरीर उपलब्ध होता है। जब तक जीव निष्ठा सहित भगवान् की शरण ग्रहण नहीं करता, तब तक इसी प्रकार अनंत काल तक कर्मभोग का क्रम चलता रहता है। यदि भक्तियोग के माध्यम से जीव भगवान् की सेवा में संलग्न हो जाए तो फिर वह भगवान् के उद्देश्य से कर्म करना प्रारम्भ करता है। इन कर्मों में अपनी इन्द्रियों की नहीं, अपितु भगवान् की इन्द्रियों की तृप्ति की कामना रहती है। भक्तिमय सेवा से परिपूर्ण यही कर्म 'निष्काम कर्म' कहलाते हैं। इनको करते-करते हमारी चेतना निर्मल हो जाती है। करोड़ों जन्मों के कर्मफल नष्ट हो जाते हैं, संसार में आवागमन रुक जाता है और जीव पुनः अपने शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप को प्राप्त करता है।

(५) काल :-

अहमेवाक्षयः कालो

“मैं ही शाश्वत काल हूँ।” — (भगवान् श्रीकृष्ण, गीता १०.३३)

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो।

“समस्त जगतों को विनष्ट करने वाला काल मैं हूँ।”

— (भगवान् श्रीकृष्ण, गीता ११.३२)

काल भी भगवान् श्रीकृष्ण की एक शक्ति है, जिसके प्रभाव से इस संसार की समस्त भौतिक वस्तुओं में परिवर्तन होते रहते हैं। इसी के प्रभाव से प्राणियों के शरीरों का निरंतर रूपांतरण एवं विनाश होता है; भौतिक जगत का सृजन, पालन एवं प्रलय होता है। पृथ्वी के ऊपरी लोकों में काल का प्रभाव क्रमशः कम होता जाता है। उदाहरण स्वरूप, स्वर्ग के २४ घण्टे यहाँ के एक वर्ष के बराबर होते हैं, और उससे भी कहीं आगे भौतिक जगत में सबसे ऊपर स्थित ब्रह्मलोक के २४ घण्टे यहाँ के ८६४ करोड़ वर्षों के बराबर होते हैं। ब्रह्मलोक से परे भगवान् के धाम में काल का कोई प्रभाव नहीं होता।

भगवान् का परम धाम :-

यद्गत्वा न निर्वतन्ते तद्धाम परमं मम।

“जो लोग मेरे उस परम धाम में पहुँच जाते हैं, वे इस जगत में फिर से लौटकर नहीं आते।”

—(भगवान् श्रीकृष्ण, गीता १५.६)

करोड़ों ब्रह्माण्डों से निर्मित इस संसार को जड़ जगत कहते हैं। जड़ जगत में समस्त ग्रहलोक बारंबार जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि के दुख-क्लेशों से ग्रस्त हैं। वास्तव में जड़ जगत अत्यंत कष्टदायक, अंधकारमय कारागार के समान है। यह कृष्ण-सेवा से विमुख बद्धजीवों की विकृत मनोवृत्ति को सुधारने का स्थान है। भगवान् कृष्ण ने जड़ जगत के माध्यम से हमें अपनी भोगवासना पूर्ण करने का सुअवसर प्रदान किया है। किन्तु इससे जुड़े अवश्यम्भावी दुख-क्लेशों को भी हमें ही झेलना होता है। उन्होंने गीता में इस जगत को- 'दुःखालयम् अशाश्वतम्'-अर्थात् 'दुखों का घर' तथा 'अस्थायी' कहा है। किन्तु चूँकि हम भगवान् के नित्य अविच्छेद विभिन्नांश हैं, अतः हम स्वरूप से भगवान् के ही समान चिन्मय एवं नित्य हैं। इसलिए हमारा नित्य स्थायी घर भगवान् का परम धाम है। यह दुःखमय नश्वर जड़ जगत हमारा नित्य आश्रय-स्थान नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण की भी यही इच्छा रहती है कि प्रत्येक बद्धजीव भगवद्भक्ति का अनुशीलन करने के माध्यम से अपनी चेतना को शुद्ध करके उनके धाम लौट जाए।

उस दिव्य धाम में जाने के पश्चात् उसे फिर इस जड़ जगत में लौटना नहीं पड़ता। भगवद्धाम भगवान् की पराशक्ति द्वारा संचालित होता है। उस वैकुण्ठलोक में किसी भी प्रकार की अपूर्णता नहीं है। वह काल के प्रभाव से भी सदा मुक्त रहता है। वह दिव्यधाम भगवान् के प्रकाश से ही प्रकाशित रहता है, वहाँ सूर्य या चंद्र की आवश्यकता नहीं होती। भगवद्धाम में जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि नाम की कोई वस्तु नहीं है। वहाँ जीवन नित्य, ज्ञानमय एवं आनंदमय रहता है। भक्तियोग के सहारे भगवद्धाम लौटना ही प्रत्येक जीव का परम कर्तव्य है।

भक्तियोग की श्रेष्ठता

भगवद्गीता में भगवान् को प्राप्त करने हेतु विभिन्न योग पद्धतियों का वर्णन किया गया है, जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग इत्यादि। किन्तु प्रत्येक अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने भक्तियोग की श्रेष्ठता पर ही विशेष बल दिया है। वास्तव में सब योगों की चरम परिणति भक्तियोग में ही है। अन्य योगों से भगवान् की केवल आंशिक उपलब्धि होती है और उनकी साधना भी अत्यंत कष्टकर होती है। भगवान् ने स्वयं ऐसा कहा है 'क्लेशोऽधिकतरस तेषाम्' (गीता १२.५)। भक्तियोग से भगवान् को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है, एवं यह अत्यंत सहज एवं

आनन्दप्रद भी है। अन्य योग भक्ति योग तक पहुँचने की सीढ़ी के विभिन्न स्तरों के समान है।

‘भक्ति’ प्रत्येक जीव के हृदय की नित्य स्वाभाविक वृत्ति है। कृत्रिम रूप से इसे कहीं से लाया नहीं जाता।

भक्तियोग के माध्यम से जीव तथा भगवान् के नित्य दिव्य संबंध को जागृत किया जाता है। श्रवण, कीर्तन, स्मरणादि भक्ति के नौ अंग हैं। भगवान के शरणागत होकर इनका अनुशीलन करने से क्रमशः पूर्ण कृष्णभावनाभावित होकर भगवद्धाम जाया जा सकता है। भगवद्गीता के अंत में भगवान श्रीकृष्ण ने इसी प्रकार से अर्जुन को अपना परम आदेश दिया है, “मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बने, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो। इस प्रकार तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे। समस्त धर्मों का परित्याग करके एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुमको समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा। डरो मत!”

सनातन धर्म

धर्म के नाम पर आजकल कुछ भी चलता है। किन्तु वास्तव में ‘धर्म’ संस्कृत का शब्द है, जो ‘धृत’ धातु से बना है। धृत का अर्थ होता है- ‘अपरिवर्तनीय’ (जिसे बदला न जा सके)। इस प्रकार धर्म का मूल अर्थ हुआ अपरिवर्तनीय गुण। जैसे पानी का अपरिवर्तनीय गुण तरलता पानी का धर्म है। इसी प्रकार अग्नि का धर्म है ज्वलन एवं प्रकाश और शक्कर का धर्म है-मिठास। तो फिर मनुष्य का धर्म क्या है? सेवा करना तथा प्रेम करना। सेवा और प्रेम मनुष्य के ऐसे दो आवश्यक गुण हैं, जो किसी भी स्थिति में नहीं बदलते। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी की सेवा करता है और किसी न किसी से प्रेम करता है। वह सेवा और प्रेम भगवान की ओर मोड़ दिया जाए तो परम-धर्म बन जाता है। इसको सनातन धर्म भी कहते हैं। सनातन शब्द का अर्थ है ‘जिसका कोई आयतन न हो’ अथवा ‘जिसका नित्य अस्तित्व हो।’ गीता में भिन्न-भिन्न स्थानों पर अर्जुन तथा श्रीकृष्ण दोनों ने एक-दूसरे को ‘सनातन’ कहा है। अर्जुन जीव है तथा कृष्ण भगवान हैं। इसलिये जीव और भगवान का परस्पर संबंध भी सनातन है और सनातन धर्म ही जीवमात्र का मूल धर्म है। कोई जीवात्मा किसी पेड़ के शरीर में रहे या किसी पशु के, किसी अमरीकन व्यक्ति के शरीर में रहे या किसी भारतीय के, किसी ईसाई के शरीर में रहे या किसी हिन्दू के

इससे उसका मूल धर्म परिवर्तित नहीं होता। सनातन धर्म को किसी मनुष्य ने नहीं बनाया। ये तो साक्षात् भगवत्प्रणीत है। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण सारे जीवों के इसी धर्म की व्याख्या करते हैं एवं उसके अलावा अन्य सभी धर्मों को छोड़ने का परामर्श देते हैं।

मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य

आहार, निद्रा, भय और मैथुन यह चार क्रियाएं पशु तथा मनुष्य समान रूप से करते हैं। किन्तु मनुष्य में एक अतिरिक्त विशेष गुण है, धर्म में प्रवृत्ति। धर्मविहीन मनुष्य का जीवन तो पशु के समान है। किन्तु आज संसार में सभी मनुष्य केवल उच्चपद तथा भोग और ऐश्वर्य हेतु प्रयासरत हैं। गिने-चुने तथाकथित धार्मिक लोगों का भी कोई भौतिक स्वार्थ है। अधिकांश लोग डॉक्टर या इंजीनियर बनना चाहते हैं। किन्तु क्या हम डॉक्टर या इंजीनियर बनने ही इस संसार में आए हैं? क्या इसलिए मनुष्य जन्म को अत्यंत दुर्लभ बताया जाता है? अत्यधिक प्रयास के बाद यदि हम यह सब बन भी जाएं, हमारी अच्छी नौकरी लग जाए घर-गृहस्थी बस जाये, सुख-सुविधा प्राप्त हो जाए, तो भी मृत्यु के साथ-साथ क्या इन सबका महत्व भी सदा के लिये समाप्त नहीं हो जाएगा? तत्पश्चात्, फिर किसी नए शरीर में जन्म लेकर हमें यही प्रक्रिया दोहरानी पड़ेगी। हम फिर पढ़ाई करेंगे, नौकरी में लगेंगे, घर बसाएंगे, सुख-सुविधाएँ जुटाएंगे और अन्त में मर जाएंगे। अनंतकाल तक इसी प्रकार चबाये हुए को चबाते रहेंगे। जीवन की उपलब्धियों का अंतिम परिणाम शून्य ही रहेगा।

ऐसी स्थिति में मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य जानना अत्यंत आवश्यक है। परम उद्देश्य का दृढ़ निश्चय कर लेने के बाद ही जीवन के अन्य उद्देश्यों का विचार करना चाहिए। आत्म-साक्षात्कार ही मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य है। भक्ति साधना के द्वारा भगवान के नित्य सेवक के रूप में अपना वास्तविक परिचय जानकर हम स्वतः ही जीवन की सब समस्याओं का समाधान करके अपने मनुष्य जन्म को सार्थक कर सकते हैं। विशेष रूप से हम भारतीयों का दायित्व तो यह है कि सम्पूर्ण विश्व को इस आध्यात्मिक-ज्ञान में सुशिक्षित करने के परोपकार में सहयोग देकर भारत का जगत-गुरु होने की रीत को बरकरार रखें।

मनुष्य जीवन दुर्लभ है, तथा हमें सांसें भी गिनी-चुनी मिली है। अतः प्रत्येक क्षण को हमें बड़ी दक्षता के साथ जीवन के परम उद्देश्य तक पहुँचने में बिताना चाहिए।

भगवद्गीता की महिमा

सनातन-धर्म के अनगिनत शास्त्र हैं, जिनमें से १०८ उपनिषद् सबसे महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित माने जाते हैं। किन्तु गीतोपनिषद् (भगवद्गीता) उन समस्त उपनिषदों का भी सार है, जिसे भगवान् कृष्ण ने ५००० वर्ष पूर्व अर्जुन के माध्यम से हमारे लिए प्रकट किया। वर्तमान युग में अनेक शास्त्रों का अध्ययन करने हेतु लोगों के पास न तो समय है, न साधन है और न ही रुचि है। इसलिए 'गीता-महात्म्य' में कहा गया है—

गीता सुगीता कर्तव्य किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्धि विनिःसृता ॥

(गीता-महात्म्य-४)

“ भगवद्गीता स्वयं परमपूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के कमलमुख से निकली वाणी है। इसका पाठ करने पर किसी दूसरे शास्त्र को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। ”

प्रतिदिन इस गीता-ज्ञान की गंगा में डुबकी लगाने से समस्त सांसारिक कल्मष धुल जाते हैं और अन्तर्निहित भक्ति का स्वाभाविक विकास होता है।

गीता-महात्म्य का उद्धोष है—

एकं शास्त्रंदेवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्र एव ।

एको मंत्रस् तस्य नामानि यानि कर्मापि एकं तस्य देवस्य सेवा ॥

(गीता महात्म्य-७)

भगवद्गीता ही विश्व का एकमात्र शास्त्र है। एकमात्र कृष्ण ही परमपूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में सबके ईश्वर हैं। उनके नामों का मंत्र—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

ही महामंत्र है, और उन भगवान् कृष्ण की सेवा करना ही सब प्राणियों का एकमात्र कर्म है। ”